Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(3), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

भारतीय संस्कृति के अनुसार वेदों में मोक्ष का वैशिष्ट्य

डॉ. अमित भार्गव
सहायक प्राध्यापक, शास्त्रविद्या गुरुकुलम्
कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद हैं, जिनमें मानवजीवन के परम लक्ष्य के रूप में **मोक्ष** को सर्वोच्च पुरुषार्थ स्वीकार किया गया है। वेदों में ब्रह्म, जीव तथा उनसे सम्बन्धित तत्त्वचिन्तन, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चतुर्विध पुरुषार्थों एवं विशेषतः परम पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष का व्यापक एवं गम्भीर विवेचन प्राप्त होता है। चारों वेदों में जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण, ब्रह्म का स्वरूप, जीव का तत्त्व, जीव-ब्रह्म सम्बन्ध, कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्म, सत्कर्म की प्रेरणा, आध्यात्मिक साधना तथा मोक्षप्राप्ति के उपायों का विविध रूपों में प्रतिपादन किया गया है। वेदों में ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या तथा परम सत्य की अनुभूति को मानवजीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। इसी कारण वेद केवल लौकिक जीवन के अभ्युदय एवं कल्याण के मार्गदर्शक ग्रन्थ ही नहीं, अपितु मानवजीवन के परम पुरुषार्थ स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति हेतु आध्यात्मिक दर्शन एवं ब्रह्मविद्या के प्रामाणिक मूल स्रोत भी हैं। वेदों में प्रतिपादित मोक्ष की अवधारणा आत्मा के बन्धनों से विमुक्त होकर परमब्रह्म की अनुभूति अथवा परम आनन्द की प्राप्ति का द्योतक है, जो भारतीय दार्शनिक परम्परा की आधारशिला के रूप में प्रतिष्ठित है।

मोक्ष का स्वरूप

"मुच्" धातु से बने "मोक्ष" शब्द का सामान्य अर्थ है – बन्धन से मुक्ति, त्याग अथवा देहत्याग। सामान्य दृष्टि से मृत्यु के समय मनुष्य स्थूल शरीर का त्याग करता है, जिससे उसके लौकिक सुख-दुःख आदि भी समाप्त हो जाते हैं। अतः सामान्यजनों के मतानुसार देहत्याग को ही मोक्ष माना जाता है। परन्तु भारतीय दर्शन-परम्परा में "मोक्ष" केवल मृत्यु का नाम नहीं है, अपितु जन्म-मरण के चक्र से सर्वथा मुक्ति रूप परम दिव्य अवस्था है। अतः मृत्यु और मोक्ष के बीच बड़ा अन्तर है।

ऋषि-मुनि तथा दार्शनिक मानवजीवन का लक्ष्य दो प्रकार का मानते हैं – (१) ऐहिक जीवन में अभ्युदय रूप सुख-समृद्धि की प्राप्ति, (२) मरणोत्तर काल में निःश्रेयस रूप परमानन्द की प्राप्ति। यही बात वैशेषिकसूत्र में कही गई है – "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।" अर्थात् जिस धर्म से ऐहिक सुख रूप अभ्युदय तथा पारलौकिक कल्याण रूप निःश्रेयस सिद्ध होता है, वही धर्म है। यहाँ "अभ्युदय" ऐहिक समृद्धि का द्योतक है और "निःश्रेयस" परम कल्याण अर्थात् मोक्ष का पर्याय है।

जीव की परम अभिलाषा परमतत्त्व और आत्मतत्त्व का साक्षात्कार, अमृतत्व की प्राप्ति, स्वर्गलोक अथवा नाकलोक की प्राप्ति है। विशेष रूप से बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मतत्त्व का साक्षात्कार ही मानवजीवन का परम पुरुषार्थ बताया गया है। आत्मविद्या के माध्यम से जीव ब्रह्म का साक्षात्कार करके जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होता है; यही मोक्ष है। भारतीय दर्शन-परम्परा में मोक्ष के विभिन्न नाम मिलते हैं। न्यायदर्शन में मोक्ष को "अपवर्ग" कहा गया है – "तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।" सांख्यदर्शन में मोक्ष को "पुरुषार्थ" अथवा "कैवल्यप्राप्ति" कहा गया है - ***"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।"***

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(3), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

योगदर्शन में मोक्ष "कैवल्य" नाम से प्रसिद्ध है -"तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।" इस प्रकार न्याय, सांख्य, योग आदि दर्शनों में मोक्ष के नामभेद दिखाई देते हैं, किन्तु सबका सार एक ही है – जीव की सर्वबन्धनों से मुक्ति, दुःखनिवृत्ति तथा परमशान्ति और परमानन्द की प्राप्ति।

मुख्य विषय -

आत्मा का स्वरूपज्ञान ही आत्मज्ञान है। आत्मा एक सर्वव्यापी दिव्यशक्तिविशेष है। वह जगत् की रचना, पालन और संहार करता है। वही आत्मा जगत् का कर्ता, धर्ता और संहर्ता है। आत्मा अथवा ईश्वर का यह कर्तृत्व-रूप ब्रह्मा, प्रजापति आदि नामों से कहा जाता है। ईश्वर का धर्तृत्व-रूप धर्ता, धाता, विधाता, विष्णु आदि नामों से अभिहित है। इसका संहारक रूप रुद्र, महेश्वर, शिव, शर्व, काल, यम आदि नामों से कहा जाता है। इन तीनों शक्तियों का समन्वित रूप ही ईश्वर है। इस सर्वशक्तिमान् परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना मानवजीवन का परम उद्देश्य है, अथवा परमात्मा के साथ साक्षात्कार द्वारा मोक्षप्राप्ति ही मानव का अभीष्ट है। मोक्ष का अर्थ है क्लेश से मुक्ति अथवा निवृत्ति। भारतीय दर्शन के अनुसार बन्धन का मूल कारण अविद्या है। ब्रह्मज्ञान से ही अविद्या अथवा अज्ञान का नाश होता है। वस्तुतः बन्धन और मोक्ष के बीच अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः प्राणियों के लिए दोनों का स्वरूपज्ञान आवश्यक है। वास्तव में अज्ञान ही मोक्षमार्ग का बाधक है। जैसे अन्धकार दृष्टिशक्ति का बाधक होता है, वैसे ही सांसारिक विषयभोग की इच्छा मनुष्य को सन्मार्ग से रोकती है। जिस प्रकार मनुष्य भौतिक अथवा सांसारिक ज्ञान प्राप्त कर सांसारिक जीवन को सुचारु रूप से चलाता है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए आध्यात्मिक ज्ञान अथवा ब्रह्मविद्या पारलौकिक जीवन के सुख का साधन है।

अथर्ववेद का विषय-विवेचन अन्य वेदों की अपेक्षा अत्यन्त गूढ़ और विलक्षण है। ऋग्वेद आदि तीन वेद आमुष्मिक (पारलौकिक) फल देने वाले हैं, जबकि अथर्ववेद आमुष्मिक और ऐहिक – दोनों प्रकार का फल प्रदान करता है। जीवन को सुखमय बनाने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उनकी सिद्धि हेतु इस वेद में विविध अनुष्ठानों का विधान है। इस वेद में वर्णित विषयों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है – आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। आध्यात्म प्रकरण में मुख्यतः परमात्मा-विषयक विचार दिखाई देता है।

अथर्ववेद के आठवें काण्ड के पाँचवें अनुवाक के प्रथम सूक्त में सभी मनुष्यों के लिए आराध्य एक देव का वर्णन प्राप्त होता है। इस सर्वव्यापक उपास्य देव का कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है – **"पृथिव्यामेकवृत् यक्षं न अतिरिच्यते।"**[1]

उस सूक्त के प्रथम मन्त्र में दिखाई देता है – **"कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्थ।"**[2] इसका अर्थ है कि ऋषि के मन में यह प्रश्न उठता है कि वे दोनों (स्त्री-पुरुष, रयि-प्राण) कहाँ से उत्पन्न हुए। इससे जगत् की सौम्य शक्ति और अग्नि शक्ति का बोध होता है। इस सूक्त के एक मन्त्र में अग्नि-सोम रूप जगत् का वर्णन दिखाई देता है – **"अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य"**[3]**,** जिसका तात्पर्य यह है कि जगत् की अग्नि और सोम रूप दोनों शक्तियों का मूल तत्त्व एक ही अद्वितीय ब्रह्म है। अग्नि क्रियाशक्ति, तेज और परिवर्तन का प्रतीक है; सोम शान्ति, पोषण और आनन्द का प्रतीक है। ये दोनों परस्पर भिन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु दोनों का परम आधार एक ही ब्रह्म है। अतः जगत् में दिखाई देने वाली सभी द्वन्द्वात्मक

[1]अथर्व. ८।५।१।२६

[2]अथर्व ८।५।१।१

[3]अथर्व ८।५।१।१४

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(3), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

शक्तियों का मूल कारण परब्रह्म ही है। अग्नि-सोमात्मक विश्व उसी से उत्पन्न होता है, उसी से धारण किया जाता है, और अन्त में उसी में विलीन हो जाता है। अतः अग्नि और सोम का भेद केवल व्यावहारिक दृष्टि से है, वास्तव में दोनों का स्वरूप ब्रह्म की एकता में ही प्रतिष्ठित है। विद्वान् तपस्या द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है, जैसा कि कहा गया है – "ब्रह्मैतद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम्।"[4] मन्त्र में प्रयुक्त 'विपश्चित्' शब्द का अर्थ है – जो जगत् को सूक्ष्म दृष्टि से देखता है, अर्थात् एकाग्रचित्त व्यक्ति। अथर्ववेद के एक मन्त्र में अत्यन्त दार्शनिक दृष्टि से बन्ध और मोक्ष का स्वरूप निरूपित हुआ है।***एकया च दशभिश्च सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च। तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता विमुञ्च॥***[5] इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि मोक्षप्राप्ति के लिए सबसे पहले अविद्या का नाश आवश्यक है। अविद्या ही जीव के बन्धन का मूल कारण है। जब तक अज्ञान बना रहता है, तब तक जीव शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि में आत्मभाव रखकर जन्म-मरण रूपी संसारचक्र में घूमता रहता है। अतः आत्मविद्या द्वारा अविद्या की निवृत्ति मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी है। यह मन्त्र जीव के स्वरूप के विषय में गम्भीर प्रश्न प्रकट करता है – अस्थियुक्त स्थूल शरीर का निर्माता कौन है? अस्थिरहित चेतन जीवात्मा का स्रष्टा कौन है? इन दोनों का नियन्ता, द्रष्टा और प्रेरक कौन है? शरीर में आत्मा कहाँ रहती है? इस विषय में अथर्ववेद में स्पष्ट कहा गया है – ***को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति। भूम्या असुरसृगात्मा क्वस्विद् को विद्वांसमुपगात् प्रष्टुमेतत्॥***[6] तात्पर्य यह है कि जगत् में दिखाई देने वाले देह और उसके चेतनाधार के रहस्य को जानने के लिए ऋषि जिज्ञासा प्रकट करता है। अस्थियुक्त स्थूल शरीर तो दिखाई देता है, परन्तु उसका पोषक, धारक और प्रेरक अस्थिरहित सूक्ष्म जीवात्मा है। वही शरीर में चेतना का संचार करता है, प्राणशक्ति को धारण करता है और इन्द्रियों तथा मन की क्रियाशीलता को सम्भव बनाता है। जीवात्मा के निकल जाने पर शरीर की सभी क्रियाएँ रुक जाती हैं और देह केवल जड़ रह जाता है। अतः मन्त्र में "यदनस्था बिभर्ति" इस वाक्य से स्पष्ट प्रतिपादित होता है कि अस्थिरहित आत्मा अस्थियुक्त शरीर को धारण करता है, पोषण करता है और जीवनशक्ति से सम्पोषित करता है। जीवात्मा की सन्निधि से ही प्राणियों में सत्त्व, चैतन्य और जीवनव्यापार होता है। तथापि जीवात्मा स्वयं भी स्वतन्त्र नहीं है, अपितु परमात्मा के अधीन और उसी से प्रेरित है। अतः परमात्मा ही सब प्राणियों का परम आधार है, जीवात्मा उसकी विशेष शक्ति है और शरीर उसके कर्मानुसार प्राप्त साधन है – यही वेदान्त का सिद्धान्त है। इस प्रकार मन्त्र में जीवात्मा के शरीरधारण-कर्तृत्व, प्राणसंरक्षण-कर्तृत्व तथा परमात्माधीनत्व का सूक्ष्म रूप से प्रतिपादन हुआ है। इस मन्त्र से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा शरीर का पोषण करती है और जीवात्मा के द्वारा ही प्राणियों का अस्तित्व सुरक्षित रहता है। जीवात्मा दूषित चित्तवृत्तियों का नाशक है – "दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्यामेनिरसि।"[7] वह प्रेरकशक्तिविशेष है, दीप्तिमान् और कान्तिमान् है, शरीर का रक्षक और पालक है, जीवशरीर में सूर्य-चन्द्र के समान ज्योतिर्मय तथा प्रकाशदाता है – "शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरि ज्योतिरसि।"[8] जीवात्मा विश्वतोमुख है, क्योंकि उसके अनेक स्वरूप हैं। वह स्त्री है, वह पुरुष है, वह कुमार है, वह कुमारी है, वह वृद्ध भी हो सकता है। अथर्ववेद में जीवात्मा की नित्यता, सर्वव्यापकता तथा देहान्तर-

---

[4]अथर्व ८।५।१।३

[5]अथर्व ७।१।१५।३

[6]अथर्व ९।५।१४

[7]अथर्व २।३।१।१

[8]अथर्व २।३।१।५

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(3), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

प्राप्ति का प्रतिपादन दिखाई देता है। जैसे –***त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥***[9] इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि एक ही जीवात्मा कर्मानुसार कभी स्त्रीरूप में, कभी पुरुषरूप में, कभी कुमार और कभी कुमारीरूप में जन्म लेता है। वही वृद्धावस्था में दण्ड के सहारे चलता है तथा बार-बार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। अतः जीवात्मा देहभेद से भिन्न नहीं है, अपितु नित्य और अविनाशी है।

अथर्ववेद में जीवात्मा को परमात्मा का दिव्यांशरूप, चेतनस्वरूप तथा तेजोमय बताया गया है। वह देहधारण के समय मन और हृदयदेश में प्रतिष्ठित होकर सभी शारीरिक-मानसिक कार्यों को प्रेरित करता है। मृत्यु के पश्चात् कर्मानुसार पुनः माता के गर्भ में प्रवेश कर नया शरीर धारण करता है। यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त वेदों में प्रतिपादित है। जीवात्मा ब्रह्मतेज के प्रकाशस्वरूप होने के कारण तेजोमय और ज्योतिर्मय कहलाता है। हृदय में स्थित होकर वह अग्नि के समान सम्पूर्ण देह को चेतना से प्रकाशित करता है और जीवन का मूल आधार होता है। अतः अथर्ववेद में जीवात्मा की दिव्यता, नित्यता, पुनर्जन्म तथा ब्रह्म से सम्बन्ध अत्यन्त स्पष्ट रूप से निरूपित हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मविद्या को ही मानवजीवन का परम लक्ष्य बताया गया है – "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।"[10] अतः जीवात्मा ब्रह्मतेज के प्रकाशस्वरूप होने के कारण तेजोमय और ज्योतिर्मय कहलाता है। हृदय में स्थित होकर वह अग्नि के समान सम्पूर्ण देह को चेतना से प्रकाशित करता है। कर्मानुसार पुनर्जन्म प्राप्त करता है और आत्मज्ञान के द्वारा जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष का अधिकारी बनता है। इस प्रकार अथर्ववेद में जीवात्मा की नित्यता, पुनर्जन्म, ब्रह्म से सम्बन्ध तथा मोक्ष के साधन का समन्वित रूप से निरूपण हुआ है।

सूक्ष्मशरीर तथा संस्कार के द्वारा नित्य जीवात्मा कभी नीचगति और कभी उच्चगति को प्राप्त होता है। नित्य जीवात्मा अनित्य चित्त के साथ माता के गर्भ में जन्म लेता है। आत्मा और चित्त – दोनों परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले हैं। जीवात्मा द्रष्टा है और चित्त दृश्य है। द्रष्टा दृश्य को देख सकता है, परन्तु दृश्य द्रष्टा को नहीं देख सकता। सूक्ष्मशरीर तथा संस्कार के द्वारा नित्य जीवात्मा विचरण करता है। परन्तु जीवात्मा मर्त्य चित्त के साथ संयुक्त होकर माता के गर्भ में आता है। तब आत्मा शरीर को धारण करती है। पुनः जब वह चाहती है, तब जीवशरीर का त्याग कर निर्बाध गति से विचरण करती है।***अनच्छये तुरगतु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्। जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्यै ना सयोनिः॥***[11]

आत्मा की सात ऊर्ध्वगतियाँ हैं। ऊर्ध्वलोक क्रमशः भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य हैं। इन ऊर्ध्वलोकों का वर्णन अथर्ववेद में प्राप्त होता है।[12] जीवात्मा दिव्य प्रभाव से भिन्न-भिन्न स्थानों में जाने में समर्थ है। अतः ऋषि की प्रार्थना है – हे जीवात्मन्! तू दिव्य दृष्टि प्राप्त कर सूर्यलोक, वायुलोक, द्युलोक, पृथिवीलोक तथा औषधीलोक को जाती है – ***सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। आपो वा गच्छ यदि यत्र ते हितमौषधीषु प्रतिष्ठिता शरीरैः॥***[13]

मृत्यु के पश्चात् नित्य जीवात्मा मनुष्य-आयु प्राप्त कर शरीर धारण करके पृथिवीलोक में पुनः आने की प्रार्थना अथर्ववेद में प्राप्त होती है –***अव सृजपुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान्। आयुर्वसान उप यातुशेषः सं गच्छतां***

---

[9]अथर्व १०।४।२।२७

[10]*बृहदारण्यकोपनिषद् २.४.५*

[11]अथर्व ९।१०।८

[12]अथर्वसं. ९।५।३

[13]अथर्व. १८।२।७

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(3), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

तन्वाऽसुवर्चाः॥[14]केवल पुनर्जन्म की प्रार्थना का ही वर्णन नहीं मिलता, अपितु स्थूल और सूक्ष्म कारणशरीरों के द्वारा स्वर्गगमन का उपदेश भी प्राप्त होता है –***प्रजानन्तः प्रतिगृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्त। दिवं गच्छ प्रति तिष्ठ शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः॥***[15]अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड में जीव के परम लक्ष्य रूप में नाक, स्वर्ग, देवयान, ओदनरूप ब्रह्मप्राप्ति, अमृतलाभ तथा सुकृतलोकलाभ आदि का उल्लेख है। केवल जीवन के लक्ष्य का निर्धारण ही नहीं, अपितु ब्रह्मप्राप्ति के उपाय भी अथर्ववेद में वर्णित हैं। 'न कं' अर्थात् 'अकं', और जहाँ 'न अकं' है वह 'नाक' है। अर्थात् जहाँ सुख के अभाव का अभाव है अथवा निरन्तर सुखावस्था बनी रहती है, वही नाक है। नाक क्या है? किन उपायों से नाकलोक प्राप्त होता है? यह सब अथर्ववेद में वर्णित है। ग्यारहवें काण्ड के प्रथम सूक्त के सातवें मन्त्र में दिखाई देता है –***साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय। ऊर्ध्वो नाकस्याधिरोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति॥***[16]इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने जीवन में सद्गुणों, सत्कर्मों, ज्ञान तथा आध्यात्मिक बल से सम्पन्न होकर उत्तरोत्तर आत्मोन्नति प्राप्त करे। "सजातैः पयसा" का भाव पोषण, शुद्धता और जीवन-विकास है। ऐसे दिव्य गुणों से युक्त साधक महान् वीर्य अर्थात् आध्यात्मिक सामर्थ्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है।

मन्त्र के उत्तरार्ध में "ऊर्ध्वो नाकस्याधिरोह विष्टपम्" इस वचन से साधक के आध्यात्मिक आरोहण का निर्देश किया गया है। यहाँ 'नाक' केवल कोई भौतिक लोकविशेष नहीं, अपितु दुःखरहित, आनन्दरूप, परमशान्तिमय आध्यात्मिक पद-विशेष है। "स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति" – इससे यह संकेत मिलता है कि उसी नाकलोक को स्वर्गलोक कहा जाता है। यह स्वर्ग केवल पुण्यभोग का स्थान नहीं, अपितु वेदान्त-दृष्टि से परमात्मा की समीपता, ब्रह्मानुभूति तथा आत्मोन्नति का प्रतीक भी है।

अतः यह मन्त्र प्रतिपादित करता है कि जीव शुद्ध आचरण, सत्कर्म, ब्रह्मविद्या तथा आध्यात्मिक साधना से अपने चित्त को शुद्ध कर देवयानमार्ग से नाकलोक अथवा स्वर्ग का अधिकारी बनता है। अथर्ववेद में वर्णित 'नाक' दुःखनिवृत्ति, अमृतत्व, परमशान्ति तथा ब्रह्मप्राप्ति का प्रतीक है। हे यजमान! अपने सजातीय पुरुषों के साथ दूध के समान सारभूत कर्मफल प्राप्त कर, जिससे देहावसान के पश्चात् तू ऊर्ध्वदिशा में स्थित, दुःखस्पर्शरहित नाकलोक को प्राप्त हो – जिस लोक को सुकृत कर्मफल के उपभोग्य स्वर्गलोक के रूप में ज्ञानीजन कहते हैं।

एक ही मन्त्र में स्वर्ग और नाक – दोनों शब्दों का प्रयोग वेद में हुआ है। जैसे –

श्राम्यता पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम्।
येन रोहात् परमापद्य यद वय उत्तमं नाकं परमं व्येम॥[17]

इसका अर्थ है – हे परमेश्वर! परिश्रम करने वाले, अन्न पकाने वाले, सोमाभिषव करने वाले यजमानों को जानकर उन सबको स्वर्ग पर आरूढ़ करें, जिससे वे सब उत्तम, दुःखरहित परम नाक को प्राप्त करें।

कर्मणोऽपि बोद्धव्यं च विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥[18]

---

[14]अथर्व. १८।२।१।१०

[15]अथर्व. २।६।३।५

[16]अथर्व. ११।१।७

[17]अथर्व. ११।१।३।१०

[18]श्रीमद्भगवद्गीता ४/१७

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(3), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

अर्थात् कर्म, विकर्म तथा अकर्म – इन तीनों का स्वरूप भली-भाँति जानना चाहिए, क्योंकि कर्मों की फलप्राप्ति की प्रक्रिया अत्यन्त गहन और सूक्ष्म है। यही सिद्धान्त श्रुति भी समर्थन करती है – **"पुण्येन पुण्यं लोकं नयति, पापेन पापम्, उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्।"**[19]

इस श्रुतिवचन के आधार पर कहा जा सकता है कि तीन प्रकार के कर्म – कर्म, विकर्म तथा अकर्म – जीव की गति निर्धारित करते हैं। विहित सत्कर्मों से जीव पुण्यलोक प्राप्त करता है, निषिद्ध विकर्मों से पापमय लोक को प्राप्त होता है, तथा मिश्रित कर्मों अथवा पुण्य-पाप मिश्रित कर्मफल से पुनः मनुष्यलोक में जन्म लेता है। अतः कर्मफल का सिद्धान्त मानवजीवन की गति का मूल आधार है – यही भारतीय दर्शन का अभिप्राय है।

अथर्ववेद भी यही प्रतिपादित करता है कि जीव की परलोकगति केवल ईश्वर की इच्छा से नहीं, अपितु उसके अपने कर्मों के अनुसार ही होती है। यज्ञ, सत्कर्म, ब्रह्मविद्या, ईश्वरोपासना तथा सदाचार जीव को स्वर्ग, नाकलोक और अन्ततः ब्रह्मप्राप्ति की ओर ले जाते हैं; इसके विपरीत आचरण अधोगति उत्पन्न करता है। अतः मोक्षमार्ग में कर्मशुद्धि, ज्ञान तथा उपासना का समन्वय अनिवार्य है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति के अनुसार वेदों में प्रतिपादित मोक्ष मानवजीवन का परम पुरुषार्थ तथा आध्यात्मिक साधना का सर्वोच्च लक्ष्य है। वेदों में मोक्ष का तात्पर्य केवल जन्म-मरणरूप संसारचक्र से मुक्ति तक सीमित नहीं है, अपितु आत्मस्वरूप की अनुभूति, अविद्या का नाश, कर्मबन्धनों से विमुक्ति तथा परमब्रह्म की प्राप्ति से है। वैदिक ऋषियों ने धर्म, ज्ञान, कर्म और उपासना के समन्वित मार्ग द्वारा मनुष्य के सर्वांगीण विकास तथा अन्ततः आत्मसाक्षात्कार का आदर्श प्रस्तुत किया है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद–चारों वेद मोक्ष के विविध आयामों का प्रतिपादन करते हुए इस सत्य की स्थापना करते हैं कि आत्मज्ञान एवं ब्रह्मविद्या के बिना स्थायी मुक्ति सम्भव नहीं है। यज्ञ, तप, सत्य, ऋत, सदाचार, निष्काम कर्म, ईश्वरोपासना तथा आत्मचिन्तन को मोक्षप्राप्ति के प्रमुख साधन माना गया है। इस प्रकार वेदों में ज्ञान, कर्म एवं उपासना का समन्वित स्वरूप भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान के रूप में परिलक्षित होता है।

भारतीय संस्कृति में मोक्ष का आदर्श केवल व्यक्तिगत कल्याण तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समस्त प्राणिमात्र के कल्याण, नैतिक जीवन, आत्मसंयम, लोकसंग्रह तथा विश्वबन्धुत्व की भावना से भी सम्बद्ध है। इसी कारण वैदिक मोक्ष-दर्शन व्यक्ति को आन्तरिक शान्ति, नैतिक उत्कृष्टता, आध्यात्मिक उन्नति तथा सार्वभौमिक कल्याण की दिशा में प्रेरित करता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वेदों में प्रतिपादित मोक्ष-सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक चेतना, दार्शनिक परम्परा तथा जीवन-दृष्टि का मूलाधार है। वेद मानव को केवल धार्मिक अनुष्ठानों का उपदेश नहीं देते, अपितु आत्मज्ञान, ब्रह्मसाक्षात्कार तथा परम आनन्द की प्राप्ति का सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। यही कारण है कि वेदों में प्रतिपादित मोक्ष की अवधारणा आज भी भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों की संवाहक तथा सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणास्रोत बनी हुई है।

[19]प्रश्नोपनिषद् ३/३/७

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:7(3), July 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

सन्दर्भग्रन्थसूची

१. शुक्लयजुर्वेदसंहिता
२. ऋग्वेदसंहिता
३. अथर्ववेदसंहिता
४. श्रीमद्भगवद्गीता
५. प्रश्नोपनिषद्
६. शतपथब्राह्मणम्
७. गोपथब्राह्मणम्
८. बृहदारण्यकोपनिषद्
९. योगसूत्रम्
१०. वैशेषिकसूत्रम्
११. न्यायसूत्रम्
१२. सांख्यसूत्रम्